मोहलिन (स्विटजरलैण्ड)
जून १४, २००१

सन्देश संख्या ३६

प्रबोध की आकांक्षा भी एक अहंकेन्द्रित गति है

प्रबोध की आकांक्षा भी एक अहंकेन्द्रित गति है और इसलिए वह दुर्गति अर्थात् उस दिव्य की ओर न ले जानेवाली गति है। मन अपनी आकांक्षाओं, अभिलाषाओं और अपेक्षाओं के माध्यम से आत्मसंरक्षी यंत्ररचना को संपोषित रखता है। क्रियायोग के सरल एवं सतत अभ्यास के द्वारा मन का विलय हो जाता है अर्थात् वह चित्तवृत्ति की संरचना एवं गणना की सीमा से बाहर निकल जाता है और तब मौन के परमानन्द से युक्त 'अनाकांक्षा' की अवस्था का उदय होता है।

क्रियायोग 'निर्मनावस्था' की ओर ले जाने वाली यात्रा है जबकि आकांक्षायें अपनी चक्रीय गति के कारण मन को संपोषित एवं सम्पुष्ट करती रहती हैं। इस चक्रीय गति में प्रगति नहीं होती, जो जहाँ है वहीं बना रहता है। क्या मन आकांक्षाओं के इस शरारत को देख और पहचान सकता है? जो 'वास्तव में है' उसे समझने की ऊर्जा का संग्रहण ही देखना (दर्शन) है। इसके द्वारा उस अभूत कर देने वाली दिव्य चेतना की झलक प्राप्त होती है । इसे प्रयत्न कर खोजना ऊर्जा का क्षय तथा मन के विभेदकारी चित्तवृत्ति के बंधन में जकड़े रहना है। उसकी आकांक्षायुक्त खोज अनुबन्धित प्रतिक्रियाओं की अनुभूति के माध्यम से अहं का ही विस्तार है, किन्तु उसे देखना शून्यता और अस्तित्व की ऊर्जा की आत्मानुभूति है। खोजने के प्रयास में हम उसे देखने से वंचित रह जाते हैं। अपेक्षा, आकांक्षा और अभिलाषा क्रियायोग के मार्ग में विनाशकारी बाधायें हैं। जो आकांक्षायुक्त दर्शक से मुक्त होकर दर्शन कर सकता है, वही सच्चा धार्मिक है। देखने की ऐसी विकल्परहित अवस्था में होना साक्षी या द्रष्टा होना है। यह 'दर्शक' होना नहीं है जो प्रभावित या संलिप्त हो जाता है। यह एक 'दृश्य' होना भी नहीं है जो ऐसे या वैसे के रूप में पहचान की अपेक्षा करता हो। साक्षीभाव अर्थात् एक द्रष्टा का दृष्टिकोण, अवचेतन, अचेतन तथा मनोवैज्ञानिकों के अन्य समस्त शुष्क शब्दजालों से रहित शुद्ध चैतन्य (निर्मनावस्था) है।

मन विखण्डित चेतना है जिसके समस्त अंगभूत अवयव मनोवैज्ञानिकों के अर्थोपार्जन के उपकरण बन गए हैं। मन की गतिविधियों के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों से प्राप्त जानकारी आपको कभी भी अपने मन की व्याधियों से मुक्ति नहीं प्रदान कर सकती है। आप ही मन हैं। आप अपने मन से पृथक नहीं हैं। अतः मुक्ति 'अपने लिए' नहीं, अपितु, 'अपने' यानी 'अपने मन की आपाधापी' से चाहिए। मन के बन्धन से मुक्त होना ही समस्त व्याधियों एवं बुराइयों का अन्त तथा मुक्त सचेतनता का आविर्भाव है जो मन की गतिविधियों के परे है।

आप किसी दूसरे, चाहे वह कितना ही बड़ा विशेषज्ञ क्यों न हो, के माध्यम से अपने सम्बन्ध में नहीं जान सकते हैं। यदि आप किसी दूसरे की प्रभुता की अन्धकारपूर्ण प्रतिच्छाया में हैं तो आप अपने लिए प्रकाश नहीं बन सकते।

मुक्ति अपने स्वयं के लिए प्रकाश अर्थात् पथप्रदर्शक होना है। यह मुक्ति दूसरों पर निर्भरता और आसक्ति, अनुभव की लालसा और विचारों के जंजाल पूर्ण ढाँचे से है। आकांक्षायें, अपेक्षायें, निष्कष, पूर्वधारणायें, सिद्धान्त, वाद, आदर्श आदि विचार की व्यर्थ चेायें (बाँझपन) होने के कारण इस प्रकाश के सामने टिक नहीं पाती हैं। इन सब को द्रा भाव से देखना स्वाध्याय है। आपको स्वयं इसे देखना है, किसी दूसरे की दृष्टि से नहीं। यही है प्रेम, यही है मुक्ति।

ॐ मुक्ति ॐ